॥ ...ते रामानन्दाय नमः ॥

श्रीरामरसायनसारसंग्रह।

जिसको

यम-नियम-आदि साधनसंपन्न, तपोमूर्ति, विरक्त वैष्णव-भूषण श्री१०८ महंतजी श्रीभागीरथ-दासजी महाराजने संगृहीत किया।

और

वैयाकरणकेसरी व्याख्यानवाचस्पति नारनोलनिवासी पं० रामनारायणजी शास्त्रीने शुद्ध किया।

उसीको

समस्त भक्तजनोंके कल्याणार्थ स्व० ब्रह्मक्षत्रिय वेलजी रामजीकी धर्मपत्नी बाई पार्वतीबाईने धर्मार्थ वितरणके लिये छपाकर प्रसिद्ध किया।

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेंकटेश्वर" प्रेस

बम्बई.

मिति, माघ सु० ११, सं० १९८३

श्रीमते रामानन्दाय नमः ।

अथ रामरसायनसार-संग्रह ।

कल्याणानांनिधानंकलिमलमथनंपावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोःसपदिपरपदप्राप्तये प्रस्थितस्य।
विश्रामस्थानमेकंकविवरवचसांजीवनंसज्जनानां,
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये रामनाम १

समस्त कल्याणपरम्पराओंका स्थान, कलिमलका मन्थनदण्ड, पवित्रोंमें अतिपवित्र, रामधामके यात्रियोंके मार्गका जीवन, ब्रह्मदेव, मनु, शंकर, वाल्मीकि, काकभुशुण्ड, तुलसी आदि कविजनोंकी वाणीके विश्रामदाता, सज्जनपुरुषोंका प्राण, धर्मरूपी कल्पवृक्षका बीज ऐसा श्रीरामनाम देहधारियोंके लिए भोग मोक्षका दाता बनकर संसारमें तबतक गर्जना करता रहे जब तक सूर्य, चन्द्रमा और पृथिवी, आकाश मौजूद रहें।

श्रीगुरुदेव व अन्य महात्माओंको प्रणाम करके मैं भक्त जनोंके हितार्थ श्रीरामरसायनसार-संग्रह नामकी पुस्तक प्रकाशित करता हूं।

जो प्राणी संसारसागरसे छुटकारा पानेकी इच्छा किया करते हैं।उनको पहले उन तत्त्वोंका ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये जिनसे यह संसार बना है,क्योंकि तत्त्वोंके ज्ञानसे उनके परस्परके संबंधका ज्ञान होता है और सम्बन्धज्ञानसे कर्तव्यज्ञान होता है। वे तत्त्व तीन हैं जीव,ब्रह्म और माया।

उनके भिन्न भिन्न लक्षण क्या हैं ? एकसे दूसरेमें क्या भेद है ? इत्यादि बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेना ज्ञानी भक्तोंके लिए परम आवश्यक माना गया है।

जीवात्माके लक्षण ।

जीवको वेदादि शास्त्रोंमें आत्मा, चित्, चेतन, पुरुष आदि नामोंसे भी पुकारा जाता है। जीवका स्वरूप देह नहीं है। इन्द्रियां भी जीबका स्वरूप नहीं हैं। मन, प्राण, बुद्धि इन सबसे जीव परे है। बह जड़ नहीं है किंतु चैतन्य गुणयुक्त है। जीवका कभी नाश नहीं होता इसलिए वह नित्य है। हृदयकमलमें जीवका बास माना गया है इसलिए बह अणुस्वरूप है। जैसे जैन मतमें जीवको चीटीमें चीटीके समान, हाथीमें हाथीके परमाणुका माना गया है। वह सिद्धान्त वेदोंका नहीं है। वेद जीवको अणुरूप मानते हैं । जैसे गृहके एकदेशमें स्थित दीपकसे संपूर्ण गृहमें प्रकाश पहुँचता है। वैसे ही जीवका प्रकाश देहमें सर्वत्र फैलता है। जीवका स्वरूप घट पटादि पदार्थोंकी तरह व्यक्त नहीं है इसलिए उसको अव्यक्त कहा जाता है। बुद्धिसे परे है इसलिए उसे अचिन्त्य कहते हैं। जैसे मनुष्यके हाथ पांव आदि अवयव होते हैं वैसे जीवके अवयव नहीं हैं इसलिए वह निर-वयव माना जाता है। जैसे मिट्टीका बिकार घड़ा बनता है वैसे जीवमें कोई बिकार नहीं होता इसीसे उसको निर्विकार भी कहते हैं। जीवमें ज्ञान रहता है इसलिए उसको ज्ञानका आधार माना जाता है। जीवका नियन्ता ईश्वर है इसलिए वह कर्म भोगनेमें स्वतंत्र नहीं है। जैसे भगवान् नियंता हैं वैसे ही जीवके धारण करने वाले भी हैं इसीसे यजुर्वेदमें "तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा" आदि वचन मिलते हैं।

जीवात्मा भगवान्का शेष है भगवान् शेषी हैं। जैसे चन्दन, पुष्प, ताम्बूल आदि जीवके काममें आनेकी वस्तु हैं वैसे ही जीव भगवान्के काममें आने लायक वस्तु है इसीसे उनकी भक्ति 'परिचर्या' करता है। ऐसे जीवात्माका स्वरूप तीन प्रकारका माना गया है। बद्धजीव मुक्त-जीव, और नित्यजीव। बद्धजीव वे कहलाते हैं जो संसारमें बँधे हुए हैं। मुक्तजीव उनको कहते हैं जो संसारके आवा-गमनसे छुटकारा पा गये हैं। नित्यजीव वे कहलाते हैं जो कभी भी संसारमें नहीं आते। और आवें तो भी केवल लीला करनेके लिये। जैसे भगवान् शेषनागजी गरुड़ विष्वक्सेन आदि। जैसे वटलोईके नीचे जलती हुई अग्निके संसर्गसे जलमें गरमी पहुँचती है वैसे ही जीवा-त्माको जड़मायाके सम्बन्धसे अज्ञान, कर्म वासना और राग द्वेष आदि होते हैं। जब जड़मायाका पसारा दूर हो जाता है तब अज्ञान, कर्म-वासना राग द्वेष आदि भी हट जाते हैं। ऐसे शास्त्रके ज्ञाता ज्ञानी पुरुष मानते हैं।

ऊपर जो तीन प्रकारके जीव कहे गये हैं वे तीनों भी अनंत हैं। अर्थात् वे जीव कितने हैं इसका कोई अन्त नहीं बतला सकता है। कुछ ब्रह्मज्ञानवादी लोग कहते हैं कि, आत्मा सर्व शरीरोंमें एक हैं। उनमें कोई भेद नहीं है। परन्तु यह उनका कथन ठीक नहीं है। क्योंकि जो जीवमात्र एक ही हों तो एक जीव जब सुखका अनुभव करता है तब अन्य जीवोंको दुःख नहीं होना चाहिये। अगर कहो कि, देह भिन्न भिन्न होनेसे सुख दुःख आदिमें भेद होता है तो योगि-राज सौभरि ऋषिके शरीर भी भिन्न भिन्न उन्होंने बनाये थे, ऐसी

भागवतमें कथा है । परन्तु उनको सर्व शरीरोंमें सुख दुःख एकसा ही मालूम पड़ता था । क्योंकि संपूर्ण शरीरोंमें उनका एक ही आत्मा योगके बलसे काम करता रहता था । इसलिये आत्मा एक नहीं, किंतु अनेक हैं, यही मत शास्त्रसंमत है । क्योंकि जो सर्व शरीरोंमें एक आत्मा मानेंगे तो कोई तरता है कोई डूबता है, कोई गुरु है, कोई चेला है ऐसा भेद भी नहीं रह जायगा । और कोई मनुष्य है, कोई वृक्ष है, कोई पशु है यह भेद भी नहीं रह जायगा । क्योंकि सर्वत्र एक आत्मा होनेसे एक स्वरूपसे उसका प्रत्यक्ष होना चाहिये ।

इसी प्रकार वेद वेदान्तोंमें भी प्रति शरीरमें जीव भिन्न भिन्न माने जाते हैं, जैसे प्रमाण—"**नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम् । एको बहूनां यो विदधाति कामान् ।**"

इत्यादि वचनोंमें चेतन बहुतसे कहे गये हैं। भगवद्गीतामें भी—"नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः । **न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्**" । **यहां पर 'त्वम्; अहम्, इमे'** आदि पदोंसे जीवोंको भिन्न बतलाया गया है । श्रीतुलसीदासजी महाराज भी "**चौपाई—परवस जीव स्ववश भगवंता जीव अनेक एक श्रीकंता**"। **उत्तरकाण्ड** आदि वचनोंसे जीवोंका अनेक होना स्वीकार करते हैं ।

यदि इसपर कोई कहे कि, ऊपरके वचनोंमें जो भेद कहा गया है सो शरीरकी उपाधिको लेकर कहा गया है तो उनका वह कहना इसलिये ठीक न होगा कि, मोक्ष दशामें भी जीवोंके भेदको शास्त्र वर्णन करते हैं । तभी तो श्रीविष्णुसहस्र नाममें—

" मुक्तानां परमा गतिः "

यहांपर मुक्त जीवोंको अनेक बताया गया है।

अचित्पदार्थका लक्षण ।

अचित् पदार्थ ज्ञानशून्य है। उसका रूप बदलेता रहता है इस लिये विकाराऽऽस्पद है। अचित्पदार्थ (माया) तीन प्रकारका है । शुद्धसत्त्व, मिश्रसत्त्व और सत्त्वशून्य। शुद्धसत्त्व उसको कहते हैं जिसमें रजोगुण तमोगुणका मिलाव न हो ऐसा केवल सत्त्व । केवल सत्त्वगुण नित्य ज्ञान और नित्य आनन्दका देनेवाला है, सिर्फ भगवान्‌की इच्छा से ही वह शुद्ध सत्त्वगुण विमान, गोपुर, मण्डप आदि रूपोंमें परिणामको पाता है। इसीसे वैकुंठ (अयोध्या) आदि लोक शुद्ध सत्त्वगुण के बने हुए थे ऐसा भक्तिशास्त्रका सिद्धान्त है। वह शुद्ध सत्त्वगुण अपरिणाम तेजकी राशिके समान चमकता है। कुछ तत्त्वज्ञानी इस शुद्ध सत्त्वको जड़ कहते हैं, कोई अजड़ अर्थात् चेतन बतलाते हैं। अजड़ अर्थात् चेतन माननेपर भी उसका यही माने हो सकता है कि, नित्य मुक्त जीवोंके और भगवान्‌के ज्ञानके विना वह स्वयं प्रकाशमान है बद्ध जीवोंको उसका भास नहीं होता ।

मिश्रसत्त्व उसको कहते हैं, जो सत्त्व, रज, तम ऐसे तीनों गुणोंसे युक्त हो। बद्ध दशामें जो जीव पड़े हुए हैं उनके लिये ज्ञान व आनन्दको छिपा लेनेवाला, विपरीतज्ञानको उत्पन्न करनेवाला, भगवान्‌का नित्य क्रीड़ाका साधन, देशकालके भेदसे बहुविध विकारोंका उत्पादक है। उसीके भिन्न भिन्न नाम प्रकृति अविद्या, माया आदि हैं। प्रकृति नाम इस लिये पड़ा है कि वह विकारोंको उत्पन्न करती है । अविद्या इसलिए कहा जाता है कि, वह ज्ञानसे विरोध रखती

है । माया इसलिये कहा जाता है कि, विचित्र सृष्टि करनेका उसमें सामर्थ्य है । यही प्रकृति जब विकारावस्थामें पड़ती है तब वृद्धिको प्राप्त होती हुई २४ तत्त्वोंके नामसे प्रसिद्ध होती है । वे चोवीस तत्त्व जैसे ।

पञ्चतत्व—पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश । पांच ज्ञानेन्द्रिय जैसे—नेत्र, कर्ण, रसना, घ्राण, त्वचा इत्यादि । पांच कर्मेन्द्रियां जैसे वाणी,हाथ,पांव,मूत्रेन्द्रिय और मलेन्द्रिय इत्यादि पांच कर्मेन्द्रियोंके विषय जैसे—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, शब्द इत्यादि इन बीसमें मन, बुद्धि, चित्त अहंकारको मिलानेसे २४ होते हैं।

प्रकृतिमें गुणक्षोभ होनेसे महत्तत्त्व अहंकार आदि उत्पन्न होते हैं। गुण तीन हैं सत्त्व, रज, तम, । सत्त्वगुण ज्ञान और सुखको उत्पन्न करता है। रजोगुण विषयोंमें रागद्वेष व तृष्णा आदिको उत्पन्न करता है। तमोगुण विपरीत ज्ञान, असावधानता आलस्य निद्राको उत्पन्न करता है। प्रकृतिकी विषम अवस्थामें जो विकार उत्पन्न होते हैं उनमें पहले विकारका नाम महतत्त्व है । यह महत्तत्त्व सात्त्विक,राजस,तामस इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है ।इसी महत्तत्वसे वैकारिक तैजस, भूतादि भेदसे तीन प्रकारका अहङ्कार उत्पन्न होता है । वैकारिकसे अहंकार १० इन्द्रियां और मन यों ११ इंद्रियां उत्पन्न होती हैं। भूतादि अहंकारसे शब्द तन्मात्रा उत्पन्न होती है। उस तन्मात्रासे आकाश और स्पर्शतन्मात्रा होती है। उससे वायु और रूपतन्मात्रा उत्पन्न होती है। उससे तेज और रसतन्मात्रा प्रकट होती है। उससे जल व गन्ध तन्मात्रा उत्पन्न होती है। उससे पृथिवी उत्पन्न होती है। भूतोंकी सूक्ष्म अवस्थाका नाम तन्मात्रा है।

जैसे कुंभार मिट्टी जलको मिलाकर घट सराव आदि पात्र बन लेता है इसी प्रकार भगवान् इन सबको मिलाकर ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते है। ब्रह्माण्ड अनेक हैं। उनमें चौदह लोक विस्तार पाते हैं। वे १४ लोक एकसे दूसरा १० गुणा बड़े सात आवरणवाले हैं। भगवान्के ये लोक क्रीडाके स्थान हैं, जैसे जलमें बुद्बुदा एकदम प्रकट होता है वैसे ही ये लोक एकदमसे बन जाते हैं। पंचभूतोंमें आकाशका काम अवकाश देना है। वायुका काम बहना है। तेजका काम पचाना वगैरह है। जलका काम सींचना पिंड बनाना आदि होते हैं। पृथिवीका काम धारण आदि करना है। कानका काम शब्द सुनना, नेत्रका रूप ग्रहण करना, घ्राणका गंध लेना, रसका खट्टा मीठा आदि रस जानना और त्वचाका काम स्पर्शको जानना इत्यादि हैं। वाक् इन्द्रियका काम बोलना, हाथोंका ग्रहण करना, पावोंका चलना फिरना, मूत्र इन्द्रियका काम सृष्टि करना व मल इन्द्रियका काम मलत्याग करना है। इन१० इन्द्रियोंमें मन समान रूपसे काम करता है।

सत्त्वगुणसे रहित काल कहाता है। कालका काम है प्रकृतिके रचे हुए पदार्थोंको पकाना। कालका स्वरूप, जैसे—जितनी देरमें नेत्र झपके उतनी देरका नाम निमेष है। १८ निमेषोंकी एक काष्ठा होती है। ३० काष्ठाओंकी एक कला होती है। ३० कलाओंका १ क्षण होता है। १२ क्षणोंका १ मुहूर्त होता है ३० मुहूर्तोंका एक दिन रात हो जाता है। १५ दिन रातका १ पक्ष बनता है। २ पक्षोंका १ मास। २ मासोंका १ ऋतु। ३ ऋतुओंका १ अयन। दो अयनोंका १ वर्ष होता हैं। जब मनुष्योंका १ वर्ष भुगत जाता है तब देवता-

ओंका १ दिन रात होता है। मनुष्योंके जब चारों युग १ हजार बार बीत जाते हैं तब ब्रह्मदेवका १ दिन होता है । इस हिसाबसे ब्रह्माका आयुष्य १०० वर्षका होता है । उसके भी ५० वर्ष भुगत चुके हैं । द्वितीय परार्ध चल रहा है, वायुके रूप नहीं है केवल स्पर्श-गुण है । तेजका वर्ण लाल है । स्पर्श उसका गरम है । जलका रूप श्वेत है । स्पर्श शीत है । रस मीठा है । भूमिका रूप और रस अनेक प्रकारके हैं । वायु और पृथिवीका स्पर्श न उष्ण है और न शीत है । इस भाँति अचित् पदार्थ—माया तीन प्रकारकी कही गयी । अब ईश्वर तत्त्वका निरूपण करते हैं ।

ईश्वरतत्त्व ।

भगवान् लौकिक हेयगुणोंके विरोधी हैं । अर्थात् उनमें मायाके गुण नहीं हैं अनन्त ज्ञान और आनन्दके स्वरूप हैं । सौशील्य वात्सल्य आदि कल्याण गुणोंके धाम हैं । संपूर्ण जगत्की सृष्टि पालन व संहारके कर्ता हैं । भगवद्गीताके अनुसार—

"आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ।"

इस प्रकार आर्त, दुःखित, धनादिकी इच्छा करनेवाले, जिज्ञासु जन और ज्ञानी ऐसे चार प्रकारके स्त्री पुरुष भगवान्का आश्रय लेते हैं । धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पुरुषार्थोंके दाता हैं । विलक्षण देहसे युक्त हैं, भगवान् अज्ञानियोंके ज्ञानदाता हैं । शक्तिहीनोंको शक्ति प्रदान करते हैं । अपराधियों पर क्षमा करना, दुःखितोंपर कृपा करना, दोष-वालों पर माता पिताकी तरह प्रेम करना आपका स्वभाव है। मंद बुद्धि-

योंको शील स्वरूप, कुटिलोंके लिये सरलता, दुष्ट हृदयके जीवोंको अच्छे विचार जो भगवान्का वियोग नहीं सह सकते उनके लिये सुकुमारता। जो आपका स्वरूप देखना चाहते हैं उनके लिये सुलभता प्रदान करते हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त हैं। इसीलिये अपने भक्तों-पर दुःख देखकर—हा हा कहते हुए कृपा करते हैं। वे अपने भक्तोंकी सर्वदा भलाई ही मनाते हैं। अपने भक्तोंमें उच्च नीच कुलकी बात नहीं देखते हैं। वे भक्ति मात्रसे उनके उपाय बन जाते हैं। संदीपनि गुरुको मरा हुआ पुत्र लाकर आपनेही दिया था। श्रीरामायणके उत्तर काण्डमें ब्राह्मणके मरे हुए बालकको आपने जिलाया था। एवं अपने भक्तोंके लिये कठिनसे कठिन काम कर डालना आपका स्वभाव है। प्रह्लाद, विभीषण, गजराज, द्रौपदी, अहल्या, ध्रुव आदि पर आपने पूर्ण कृपाका परिचय दिया था।

जैसे कामी पुरुष कामिनीके शरीरकी मलिनताकी ओर ध्यान न देकर उससे प्रेम करते हैं वैसे ही भगवान् अपने भक्तोंकी भूल चूकों पर ध्यान न देकर उनका कल्याण मनाते हैं।

जब सृष्टि बनती है तब वेही भगवान् ब्रह्मदेवके अन्तर्यामी बन-कर सृष्टि रचते हैं। जब पालनका काम पड़ता है विष्णु रामकृष्ण—आदि अवतार लेकर लोकोंका पालन करते हैं। संहारके समयमें रुद्र देवताके अंतर्यामी होकर संहार करते हैं।

यदि कोई कहे कि, किसीको सुखी किसीको दुःखी बनानेमें ईश्वरमें भेद भाव रखनेका दोष आवेगा तो वह कहना इसलिये ठीक

नहीं माना जायगा कि, कर्मके हेतु बनाकर वे जगत्की रचना करते हैं। जो जैसा कर्म करता है उसको वैसा बनाते हैं। जैसे बच्चेको मिट्टी खाते देखकर माता उसकी जिह्वापर सूई टोचनेका डर बताती है वैसे ही भगवान् दुःख सुख दिखाकर भक्तोंको सावधान करते हैं जिससे फिर वे वैसा काम न करें।

भगवान् जो अवतार लेते हैं उनमें उनकी इच्छा ही प्रधान है। उनका फलतो साधुजनोंकी रक्षा, दुष्टोंका नाश करना, धर्मकी स्थापना करना आदि होते हैं। जो कोई कहे कि, भृगु आदि ऋषियोंके शाप होनेपर अवतार लेना पड़ता है तो वह कहना ठीक नहीं। सत्य बात तो यह है कि अवतार उनकी इच्छासे ही होते हैं। शाप वरदान तो एक निमित्त हुआ करते हैं। भगवान्के अवतार पांच प्रकारके हैं। पर अवतार वैकुण्ठ-श्री अयोध्यामें, व्यूह अवतार सृष्टिकी रचना पालना आदिके लिये संकर्षण प्रद्युम्न आदि रूपसे होते हैं।

विभव अवतार जैसे दीपकसे दूसरा दीपक बन जाय ऐसे बनते हैं। अंतर्यामी-चराचरके हृदयमें विराजमान रहते हैं। भगवान्का अर्चावतार-मूर्तिमें प्रकट होता है। मूर्तिमें आप अपनेको भक्तके भरोसे बनाते हैं। परन्तु सचमुचमें भक्त ही उनके भरोसेकी चीज है। मूर्तिमें भगवान् अज्ञानी जैसे दिखायी देते हैं परन्तु वे पूर्ण ज्ञानके सागर हैं। मूर्तिमें पराधीनसे दिखायी देते हैं परन्तु प्रभु स्वतन्त्र हैं। पराधीनता तो अपनी दया कृपासे दिखलाते हैं जिससे भक्तजन आपका पूजन आराधन करके सद्गतिको प्राप्त करें।

तरणोपाय।

शास्त्र व अनुभवके पार पहुँचे हुए महात्माओंने मनुष्य प्राणीके संसारसे तरनेके लिये पांच उपाय बतलाये हैं—कर्म १। ज्ञान २। भक्ति ३। शरणागति ४। गुरुदेवका अभिमान ५। कर्मको तीन प्रकारका माना गया है। नित्यकर्म, नैमित्तिक कर्म, काम्य कर्म इत्यादि। स्नान, संध्या, जप, यज्ञ, दान, होम, व्रत, तप आदि नित्य कर्मके नामसे पुकारे जाते हैं। नांदीमुखश्राद्ध, मृतके अशौचपर स्नान आदि कर्म नैमित्तिक कर्म माने जाते हैं। पुत्रकी, स्वर्गकी, धन, रोगशांति आदिकी कामनासे जो कर्म किये जाते हैं सो काम्यकर्म कहे जाते हैं। पुण्यस्थलमें बास करना, चान्द्रायण व्रत करना; उपवास चातुर्मास्यादि व्रत कन्द, मूल, फल, आदिका आहार करना, तर्पण, पूजन आदि सभीको कर्म कहते हैं। इन कर्मोंको फलकी इच्छा न रखकर करे तो उससे ज्ञानको पाकर मनुष्य तर सकता है। परंतु इतनी बातों पर जरूर ध्यान रहे कि, प्रथम नेती, धोती, बस्ती आदि क्रियाओंसे शरीरकी शुद्धि द्वारा पापोंको हटाकर, इन्द्रियोंसे सुनने देखने आदिकी लालसाको दूर करके आनन्दकन्द भगवान् श्रीरामचन्द्र ही पर तत्त्व है यह धारणा रखता हुआ यदि कर्म करेगा तभी तरण तारणकी सिद्धि उस कर्ताको पा सकती है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि आदि अष्टांग योगके अभ्याससे जब आत्माका स्वरूपज्ञान हो जाता है तब यही कर्म ज्ञानका सहायक बनकर श्रीरामतत्त्वकी प्राप्ति करानेमें समर्थ बन जाता है।

लेकिन् फिर भी इस कर्मानुष्ठानके उपायको समुदायरूपसे सर्व

मुमुक्षुजीवोंने नहीं सराहा। क्योंकि कर्मोंके अनुष्ठान करनेमें बड़ी बड़ी कठिनाइयां सामने आती हैं, कर्म करनेवालेको समय मूहूर्त आदि-पर ध्यान रखना पडता है। मंत्रके अक्षर, मात्रा, स्वरआदिमें कही फर्क पड़ जाय तो अच्छे फलके स्थानमें बुरा फल होने लगता है। कर्म कर्ताको उत्तरायण सूर्य मिलने पर देह त्यागनेकी चिंता करनी पड़ती है। ऐसी ऐसी अनेक बातोंसे कर्मका मार्ग बड़ाही कठिन है।

ज्ञानको भी तरणोपाय माना जाता है। पूर्वोक्त अष्टांग योगसे जब आत्मस्वरूपका योगीको ज्ञान हो जाता है तब वह योगी अपने हृदय-कमलमें स्थित शार्ङ्ग, धनुष और बाणधारी श्रीरामतत्त्वको पहचानने लगता है। धीरे धीरे उसे यह भान होने लगता है कि,अनंत दिव्य गुणोंके धाम,सर्व जगत्के कर्ता, राम,विष्णु,वासुदेव,नृसिंह, नारायण आदि नामोंसे पुकारे जानेवाला परतत्त्व यही है। यों उस परतत्त्वके ज्ञानके बाद जब रात्रि दिन अनुभव बढ़ता जाता है तब उस श्रीराम तत्त्वमें आपो आप साधककी भक्ति जमती चली जाती है। और यों ज्ञानसे मनुष्य संसार-सागरको तर सकता है। परंतु यह बडी ही कठिनतासे हाथमें आता है। क्योंकि अष्टांग योगसे इन्द्रियोंका रोकना कोई छोटीसी बात नहीं है फिर देहधारियोंका आयुष्य भी उतना बड़ा नहीं है कि वे उसे निभय करते ही रहें।

तीसरा उपाय भक्ति है। भक्ति उसका नाम है कि अपने स्वामीमें दिन रात स्मृति अटल रूपसे बनी रहे। जैसे तेलकी धाराको किसी पात्रमें कितनेभी ऊँचे स्थानसे छोड़ाजाय तोभी वह बीचमें टूटती नहीं है वैसेही श्रीभगवान्में भक्तकी भावना होनी चाहिये। तभी भक्ति बन

आसकर्ता है। उसको विविध शास्त्रोंमें विविध प्रकारकी कहा गया है। विशेषकर नवधा भक्ति प्रसिद्ध है। पहली भक्ति श्रवण है। भगवान्‌का गुणानुवाद उनका जगत्‌पर प्रभुत्वकी बातें जबतक सुननेमें नहीं आवेंगी तबतक कैसे भक्ति कोई कर सकता है। इसलिए श्रवण भक्ति मुख्य है। श्रवणात्मक भक्तिके अधिकारियोंमें राजा परीक्षितने प्रमुख स्थान पाया है। जिसने सात दिन एकासनपर निराहार भगवद्गुणानुवाद श्रवण किया था। दूसरी भक्ति कीर्तन है। श्रीभगवान्‌के नाम और चरित्रोंको रसना इन्द्रियसे वारम्बार उच्चारण करनेका नाम कीर्तन है। श्री शुकदेव स्वामी इस कीर्तन भक्तिमें मुख्य माने जाते हैं। तीसरी भक्ति स्मरण करना है। भगवान्‌की लीला उनके स्वरूपका मनसे चिंतन करनेका नाम स्मरण करना है। श्रीप्रह्लादजीने इसमें पहला नम्बर पाया था। चौथी भक्ति श्रीभगवान्‌की चरणपूजा है। श्रीलक्ष्मीजीसे बढ़कर इस भक्तिमें किसीने नाम नहीं पाया है। पांचवी भक्ति अर्चन अर्थात् १६ प्रकारकी सामग्रीसे भगवान्‌का पूजन करना है। राजा पृथुसे बढ़कर इस भक्तिमें कोई प्रवीण नहीं हुआ ऐसी ख्याति है। छठी भक्ति स्तोत्रोंसे भगवान्‌की वंदना करना है। अक्रूर इसमें श्रेष्ठ निकला है। सातवीं भक्ति दास भाव रखना है। श्रीहनुमान्‌जी इसमें प्रधान रहे हैं। आठवी भक्ति भगवानके साथ मित्रताका नाता जोड़ना है। श्रीसुग्रीव, व अर्जुनको इसमें सम्मान मिला है। नौवीं भक्ति आत्मनिवेदन करना है। हे भगवन् ! मैं सदाके लिए आपका हो चुका हूं, तन मन धनसे आपकी सेवा करूंगा यों जानकर एकादशी व्रतमें आलस्य न करे। भगवान्‌के अन्यसेवा उत्सवमें प्रमाद न करे। सर्वस्व भी आप पर वारनेमें न सकुचावे

तभी वह भक्ति पार पड़ती है। इस भक्तिके करनेमें राजा बलिने नाम पाया था। इत्यादि।

यह भक्तिरूप उपाय यद्यपि सुज्ञ पुरुषों द्वारा सुसंमत माना गया है तो भी इसको सिद्ध करनेमें बडी देर लग जाती है। चित्तकी चंचलता प्रबल है इसलिये इसके सधनेमें भी संदेह रह ही जाता है।

(शरणागतयोग)

चौपाई—सखा नीति तुम नीक विचारी। मम व्रत शरणागत भय हारी। चौथा उपाय शरणागति योग माना गया है। मन क्रम वचनसे एकबार भगवान्‌के सम्मुख आकर ऐसा कहे कि, हे भगवन्! मैं आपका हूं और आप मेरे हैं यह सम्बन्ध अनादिकालसे चला आता है। इसको निभाइये। शरणागतमें अक्षर मात्राका दोष नहीं होता, कर्म, ज्ञान, भक्ति ये तीनों जो नहीं पाल सकता है ऐसे प्राणियोंके लिए शरणागत योगका उपाय सरल और सुलभ है। शरणागतिमें यह भी विशेषता है कि, वह एक ही बार की जाती है। और अन्यान्य कोटियोंमें जो श्रीभगवान्‌की कृपा होती है वह शरणागत योगमें भी होती है। शरणागतयोग कई प्रकारका कहा गया है श्रीविभीषणने जब शरणागत योग किया था तब भगवान्‌ने स्वयं कहा था कि,

चौपाई। सन्मुख होहि जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नाशौं तबही॥ अर्थ—जब जिस घडीमें जीव मेरे सन्मुख शरणागत आता है तभी उसके कोटि कोटि जन्मोंके पाप दूर कर डालता हूं।

"आनकूल्यस्य संकल्पःप्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।

रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः"

मुख्यतः शरणागतिमें भी छेः बातोंकी ओर ध्यान लेना पडता है। जो भगवान्के अनुकूल बातें हों उनको करे।

जैसे एकादशी व्रत। राम कृष्ण आदिकी जयंती मनाना। भगवान् और भागवतोंमें निष्ठा रखना, जो भगवान्को प्रिय न हो उन बातोंको न करना। जैसे कांदा लहसुन आदिका भक्षण, मिथ्याभाषण भक्तोंसे द्वेष इत्यादि। शरणागतको यह निश्चय रखना चाहिये कि भगवान् हमारी अवश्य रक्षा करेंगे। क्योंकि उन्होंने अर्जुनको स्वयं कहा है कि,

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥गीता

शरणागतिका चौथा अंग यह है कि भगवान्को ही परम रक्षक माने। कृपणता--दीनता दिखाना यह पांचवा अंग है। अपना सर्वस्व भगवान्हीका है यह भावना करना इत्यादि।

नारी वा पुरुषो वापि प्रपद्य शरणं हरिम्।
तत्र चैकान्तवृत्त्यैव गच्छेतां भुवि भाव्यताम्॥

गुरुदेवका अभिमान।

पांचवां उपाय श्रीगुरुदेवका अभिमान होना है गुरुदेव समान संसारमें कोई दयालु न होगा। मेरेसे हीन दीन पामर प्राणीको अंगीकार करके श्रीगुरुदेवने मार्ग दिखलाया। नेत्रोंका अज्ञान पटल

दूर किया और अमृत विद्याका उपदेश किया । मुझको मेरे तरनेकी चिन्ता नहीं है शवरी भीलनी, पुण्डरीक आदिको श्रीगुरुकृपाहीने तारण किया था । जैसे पुत्रको रोग होनेपर माता उसके लिए दवाई सेवन करती है वैसे ही गुरुदेव भक्तके लिए आप ही उपाय ढूंढ़ निकालते हैं इसलिए धन, दौलत, हाथी, घोडे आदि सर्वस्वको श्रीगुरुमहाराजको समर्पण कर उनकी कृपाकी आशा करनी चाहिये कभी श्रीगुरुमहाराजमें मनुष्य भाव न लावे । जैसे गंगाजी साधारण नदीके समान नहीं मानी जाती जैसे भगवान् शालग्रामजीको साधारण शिला नहीं कहा जाता वैसे ही गुरुदेवको मनुष्यकी भावनासे न समझे तभी तो कहा गया है ।

"अर्च्ये विष्णौ शिलाधीर्गुरुषु नरमतिर्वैष्णवे जातिबुद्धिर्विष्णोर्वा वैष्णवानां कलिमलमथने पादतीर्थेऽम्बुबुद्धिः । श्रीविष्णोर्नाम्नि मन्त्रे सकलकलुषहे शब्दसामान्यबुद्धिर्विष्णौ सर्वेश्वरेशे तदितरसमधीर्यस्य वा नारकी सः ॥" पद्यावली ।

अर्थः । भगवान्में शिलाकी बुद्धि, गुरुमें मनुष्यकी बुद्धि, वैष्णवमें जातिकी, बुद्धि भगवान् और उनके भक्तोंके चरणोदकमें जलकी बुद्धि, भगवान्के नाममें साधारण शब्दकी सी बुद्धि, भगवान्में और और देवताओंकी समानताकी बुद्धिको जो मानता है वह मनुष्य नरकगामी होता है ।

गुरुमें अभिमान रखनेका उपाय अति उत्तम है। वह सब उपायोंसे श्रेष्ठ है। तभी तो **गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुःसाक्षात्परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवेनमः।** इस श्लोकमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों देवताओंको गुरुमें माननेका उपदेश किया गया है इसलिए रंकसे राजातक सर्व प्राणियोंके लिए यह उपाय श्रेष्ठ माना है।

श्रीरामरति।

ऊपर पांच प्रकारके उपाय कहे गये हैं उन सबका प्रयोजन श्रीरामरति प्राप्त करना है। भगवान् श्रीराघव ही विश्वके मूल हैं श्रीसीताजी ही आदिशक्तिका अवतार हैं। विना वहांतक पहुंचे चौरासीसे छुटकारा पाना कठिन हैं इसलिए जैसे श्रीरामजीके पदकमलमें अनुराग हो वह उपाय करना चाहिये। यही जीवका मुख्य कर्तव्य है। श्रीवाल्मिकीयरामायणमें श्रीहनुमानजीने रावणको श्रीरामजी महाराजकी महिमाका वर्णन करते हुए तमाम विश्वको उनका सहायक व हितकारी जो कहा है सो इसीलिए कहा गया है कि वे जीवात्माके अकारण स्वामी हैं। और जीवमात्र उनके अनन्य दास हैं। बडे दुःखसे कहा जाता है कि वे दासभूत जीव इस कलिकालमें अपने कर्तव्यसे एकदम विमुख हो गये हैं। उनमें इतनी भी पहिचाननेकी बुद्धि नहीं रह जाती है हम कौन हैं? कभी स्त्रीके तो कभी पुरुषके चोले ले लेकर असार संसारमें क्यों चक्कर काटते हैं। इससे बड़ा दुःख और क्या होगा कि तमाम चेतन अज्ञान अन्यथा ज्ञान और विपरीत ज्ञानके पीछे दिन रात ठगे जा रहे हैं।

बृहदारुण्यक उपनिषदमें महर्षि याज्ञवल्क्यने ब्रह्मवादिनी मैत्रेयीको जो ज्ञानका उपदेश किया है उसमें स्पष्ट कहा है कि, "पुत्रस्य कामाय पुत्रः प्रियो न भवति आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति" इत्यादि । अर्थात् पुत्रमें जो मोह होता है उसमें पुत्रको निमित्त नहीं होता वह अपनी आत्माके अर्थ आता है इसलिये प्रिय लगता है । तभी तो बीमारी आदिमें बालकोंका कोलाहल भी नहीं सुहाता वैसे ही स्त्रीकी कामनाके वास्ते स्त्री प्रिय नहीं लगती किंतु अपनी आत्माकी कोई कामना उससे पूरी होती है इसलिये वह प्रिय लगती है । तभी तो जब स्त्री पतिकी इच्छाके विरुद्ध चलने लगती है तब पतिसे उसका टंटा बखेड़ा होने लगता है । वैसे ही धनके लिये धन प्यारा नहीं होता वह अपनी आत्माके विनियोगमें आता है इसलिये प्यारा लगता है । भला जब इस प्रकार आत्माको प्रिय करनेके लिये धन पुत्र स्त्री आदिका उययोग शास्त्र गाता है तब जो परमात्मा उस आत्माको अत्यंत प्रिय हैं उस अपने परम पितामें प्रेम न कर स्त्री पुत्र धन आदिकी दीनता दासतामें पड़कर अपने ध्येयको हाथसे खो बैठना जीवकी कितनी भारी भूल है । इसलिये चेतन मात्रको चाहिये जबसे समझे तभीसे भगवान् श्रीराघवमें रति प्राप्त करे । तन, मन, धन तीनोंको भगवान्का समझकर उनके प्रीत्यर्थ लगावे ।

जब सद्गुरुकी प्राप्तिसे तन, मन, धन तीनों भगवान्के हैं यह बात समझमें आ जाती है तब तनसे पाप आपोआप कम होने लगेंगे ।

क्योंकि तनमें अपनापनेका अभिमान न रहेगा। वह तो भगवान्का है तब परायी वस्तुसे अपनेको पाप करनेका अधिकार कहांसे रह जायगा ? वैसे ही मनको भगवान्के अर्पण करनेपर उसको खोटे रास्तोंमें जानेकी स्वतन्त्रता कहांसे रह जायगी। यहांपर एक दृष्टान्त हैं।

बङ्गालमें श्रीचैतन्य महाप्रभु बडे आर्त भक्त हो चुके हैं। एक रोज वनमें कहीं नग्न स्त्री पुरुषोंको देखकर उनके मनपर एकाएक कामदेव सवार हो गया कि फौरन उन्होंने भगवान्से अर्दास लगायी जैसे—

श्लोकः—मार मा वस मदीयमानसे
माधवैकनिलये यदृच्छया।
हे रमारमण ! वार्यतामसौ ।
कःसहेत निजवेश्मलङ्घनम् ॥ १ ॥

अर्थः—हे कामदेव। मेरे मानसमें वास मत कर ! क्योंकि यह तो श्रीरघुनाथजीके अर्पण हो चुका है। नहीं तो मैं अभी श्रीभगवान्से प्रार्थना कर तुमको यहांसे निकलवा दूँगा। हे सीतापते ! इस दुष्टको यहांसे हटाइये। यह आपके भवनपर छलबलसे चढ आया है इत्यादि। इतना कहते ही मन औरका और बन गया इत्यादि। वैसे ही जब धनको भगवान्का समझ लिया जाता है तब उसको तीर्थ, मंदिर, साधु, ब्राह्मण गोसेवा आदिके काममें लगाते दिल नहीं दुखता, क्योंकि जब वस्तु ही पराई मानी जाती है तब दुःख क्यों हो ? दुःख तो तब होता है जब

ममत्वका अभिमान हो। यह सच्चा और मुख्य कर्तव्य इस जीवका है। यह जबतक ठीक नहीं पाला जाता तभीतक चौरासीके चक्रसे छुटकारा नहीं होने पाता और पशु, पक्षी, कृमि, पतंग आदि नाना प्रकारकी दुःखपूर्ण योनियां भोगनी पडती हैं। इसलिए मनुष्यमात्रके लिए हमारी यह सूचना है कि, वह श्रीरामपदमें मनको विश्राम द। हे जीवात्मन्। इस संसारको विच्छूसे भी अधिक दुःखदायक, दावानलसे भी अधिक जलानेवाला, सर्पसे भी अधिक विषका भरा समझकर तू श्रीजानकीजीवनसे स्नेहको वढ़ा। क्योंकि वही श्रेष्ठ बुद्धिवाला और वही शुद्ध ज्ञान है जिसमें श्रीरघुनाथजीके साथ अनुराग बढ़े। इसीसे हे जीवराशे !गभवासमें प्रतिज्ञा करते तेरे अर्व खर्व वर्ष बीत गये।भगवान् भी तेरा कल्याण ही मनाते हैं अब यह मनुष्यशरीर प्राप्त हो गया है इसलिए कोकिलकीसी करुणायुक्त बाणीसे तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि, तू भगवानकी और झुक जा जिससे यह जन्ममरणका अटूट पाश तेरे गलेसे टूट जाय। हे करुणानिधान दाशरथे ! आपसे भी यही प्रार्थना है कि, अब हम सबको अपनानेमें देर न कीजिये।

हरि ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

सर्व सज्जनोंका सेवक भागीरथदास महंत पंचवटी–गोरेराम.

श्रीमहन्तपरमवैष्णवश्री १०८श्रीभागीरथदासजी महाराजकी गुरुपरम्परा ।

सन्मार्गाग्रसरेषु सत्सु सुतरां विख्यातचारित्रकं
वार्धक्ये तरुण कुमारमिव यं प्राहुर्जना यौवने ।
स्वायत्तीकृतसाधुशिष्य निवहं नित्यंवहन्तंगुणान्
वन्दे श्रीगुरुदेवबालकदयादासं गुरुं मामकम् ॥ १ ॥
विहाय लोकवासनां गृहीतयोगसाधनं
निरामयं प्रभामयं जितन्द्रियं धृतव्रतम् ।
सरित्सुतातिशायिनं पणेषु भूतिभूषित
महत्सु नन्दरामदासपादपंकजं भजे ॥ २ ॥
भुक्त्वा नवे वयसि पञ्चनदेशतां यो
जग्राह साधुजनतास्वपि राजशब्दम्
वन्दे गुरोरपि गुरोर्गुरुदेवमूर्ति
श्रीमद्विरक्तगुरुधीरमदासवर्यम् ॥ ३ ॥
वन्द्यं यस्य पदाम्बुजं बुधजनैः प्रेम्णा समाराधितं
तं नित्यं मनसा स्मरामि सुखदं शत्रुघ्नदासंगुरुम् ।

श्रेष्ठीयत्कृपयाऽभवत्कृशधनःश्रीखेमराजोवणिक्
तं सर्वज्ञगुरुं स्वरज्ञमुकुटं वन्दे गुरुं माथुरम्॥४॥
श्रीडाकोरपुरंत्यक्वा रतलामेशपूजितम् ।
नैनीदासमहं वन्दे दैन्यशोकविनाशनम् ॥५ ॥
नमो मङ्गलदासाय महामाङ्गल्यमूर्तये ।
सर्वसम्पत्तियुक्ताय वंशेशाय महात्मने ॥ ६ ॥
श्रीभगीरथदासस्य निदेशवशवर्तिना ।
रामनारायणेनैषा श्लोकैर्बद्धा परम्परा ॥ ७॥

इति

१–श्री १०८ गुरुवर्य श्रीमथुरादासजी महाराज ।